# द्रव्य प्रतिक्रमण से जायें भाव प्रतिक्रमण में

*श्री उदयमुनि जी म.सा.*

प्रतिक्रमण के पाठों का शब्दरूप में उच्चारण द्रव्य प्रतिक्रमण है तथा भावों के साथ अपने द्वारा कृत दोषों की आलोचना, निन्दना एवं गर्हणा भाव प्रतिक्रमण है। जब कोई साधक द्रव्य प्रतिक्रमण से भाव प्रतिक्रमण में जाता है तो वह संवर-निर्जरा की साधना के साथ मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ होता है। श्री उदयमुनि जी म.सा. ने विभिन्न दृष्टान्तों से भाव प्रतिक्रमण का महत्त्व स्थापित किया है। *-सम्पादक*

आलोचण-निंदण-गरहणाहिं अब्भुट्टिठओ अकरणाए।
तं भावपडिक्कमणं, सेसं पुण दविदो भणियं।।

जिस कृतकर्म की आलोचना, निन्दना, गर्हा करें उस अकृत्य का पुनः आचरण न करें, यही भाव प्रतिक्रमण का रहस्य है, शेष तो मात्र द्रव्य प्रतिक्रमण अर्थात् शब्द रूप प्रतिक्रमण है। गणधर गौतम ने प्रश्न पूछा- भगवन्! श्रमणोपासक को पहले स्थूल प्राणातिपात का अप्रत्याख्यान होता है, फिर प्रत्याख्यान करते हुए क्या करता है? भगवान् ने उत्तर दिया 'वह अतीतकाल को प्रतिक्रमता है, वर्तमान काल को संवरता है और अनागत काल का प्रत्याख्यान करता है। (व्याख्याप्रज्ञप्ति ८.५)

छः आवश्यक रूप प्रतिक्रमण में छठा आवश्यक प्रत्याख्यान है। छहों मिलकर ही प्रतिक्रमण कहलाते हैं। मिथ्यात्व नामक मोहकर्म से होने वाले भयंकर आस्रव द्वार को रोकने वाला समकित श्रावक कहलाता है। सम्यक्त्व से संवर तो किया, पर वह प्राणातिपातादि का प्रत्याख्यान नहीं कर पाता, क्योंकि उसे अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय का उदय होता है। फिर उसका शमन करके वह बारह स्थूल व्रतों को ग्रहण करता है। उन व्रतों में लगे हुए अतिचार दोषों की आलोचना-प्रतिक्रमण चौथे आवश्यक में करता है। आत्मा की उस शुद्धता के फलस्वरूप आत्मध्यान (कायोत्सर्ग) में लीन होता है। तब छठे आवश्यक प्रत्याख्यान में क्या करता है तो उत्तर मिला- जिन पापों-अतिचार-दोषों की आलोचना, प्रतिक्रमण किया भविष्य में उन्हें नहीं करूँगा, ऐसा संकल्परूप प्रत्याख्यान करता है।

शब्दरूप, पाटीरूप, परम्परागत द्रव्य-प्रतिक्रमण बोला-सुना तो जाता है, परन्तु जीवन देखें तो कोई परिवर्तन नहीं, वही पंचेन्द्रिय विषयों में रति-अरति, वही राग-द्वेष-मोह, वही कषाय, परिवार में वैसी ही ममता, धन की तृष्णा, परिग्रह की मूर्च्छा तो यह प्रतिक्रमण तो 'कुम्हारवाला' हुआ, जिसमें 'मिच्छा मि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुक्कडं' देकर भी गलती को दोहराया जाता है।

विचारणीय यह है कि प्रतिक्रमण करने से क्या पाप अतिचार दोष धुल गए? आत्मा शुद्ध हुई। संवर-निर्जरा हुई? प्रतिक्रमण तो संवर-निर्जरा है। आभ्यन्तर तपों में प्रथम प्रायश्चित्त का भेद है। वह मात्र शब्द या पाटी रूप नहीं हो सकता। उससे परे, अत्यन्त गहन, आत्म-चिन्तन में जाकर, अन्तःकरण से अपनी दुरात्मा को दुष्कृत्य के लिए धिक्कारना, पश्चात्ताप करना, उस दुष्कृत पापादि के कर्ममल को धोकर पवित्र हो जाना भाव प्रतिक्रमण है। यह शब्दातीत अवस्था है।

गुरुणी चन्दनबाला उलाहना-फटकार दे रही थी, रात्रि में भी समोसरण में कैसे बैठे रहे मृगावतीजी? उनके यहाँ ठहरने के आधार पर्याप्त थे। मुझ जैसे तो पूरे तर्क से उत्तर देते- ओ गुरुणी जी, फटकारने की आवश्यकता नहीं है, मैं भगवान् के समोसरण में साक्षात् तीर्थंकर की वाणी सुनने में एकाग्रमन-तल्लीन थी, फिर सूर्य-चन्द्र देव साक्षात् आए हुए थे- प्रकाश ही प्रकाश था, वे गए तो रात हुई तो तुरंत चली आई। पर महासती मृगावती ने गुरुणी को कुछ भी तर्क नहीं दिया, विनयपूर्वक सुनती रही। गुरुणी मेरे हित में, आत्मकल्याण हेतु ही कह रही हैं, अतः मृगावती आचार-स्खलना की अन्तरमन से आलोचना करती हैं, आत्मसाक्षी से गर्हा करती हैं, दुष्कृत्य को धिक्कारते हुए आत्म-रमणता में चली जाती हैं और केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रकट हो जाता है।

मृगावती को अंधेरी रात में सर्प दिखा, गुरुणी का हाथ सरकाया। गुरुणी ने पूछा- कैसे देखा? ज्ञान से। अप्रतिहत या प्रतिहत ? आपकी कृपा हो तो फिर कमी क्या? तुरंत गुरुणी पश्चात्ताप- अनुचिन्तन करती है कि ओह! मैंने ऐसे उत्कृष्ट साधक, केवली की आशातना की। आत्मनिंदा-आत्मावलोकन- स्वात्मरमणता करते-करते उन्हें भी केवलज्ञान हो गया।

साधक अपने कृतकर्मों की आलोचना से घोर कर्मोत्पादक माया-निदान-मिथ्यादर्शन शल्यों को निकाल फेंकता है, मोक्षमार्ग-विघातक अनंत संसार-वर्द्धकों को दूर कर देता है, ऋजुभाव को प्राप्त होता है। (उत्तरा.२९वाँ अध्ययन, पाँचवाँ बोल) पश्चात्ताप अनुचिंतन करके समस्त पापों का परित्याग कर करणगुण श्रेणी प्राप्त कर मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय करता है, यह निंदना का फल है। (उत्तराध्ययन २९वाँ अध्ययन, बोल छठा)

मुनि प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने शब्द सुना कि पड़ौसी राजा ने बेटे पर आक्रमण कर दिया। बेटे पर ममता, स्वयं के राजत्व का अहंकार, पड़ौसी राजा के प्रति शत्रुता का भाव और भावों ही भावों में भयंकर घमासान युद्ध करके हजारों सैनिकों की मानसिक हत्या। अनित्य संसार के मायाजाल में फंस गए, उन अनन्त कर्मों का उपार्जन कर लिया जो मोक्ष मार्ग विघातक हैं। परन्तु समक्ष आए शत्रु राजा को मुकुट से मार डालूँ, ऐसा भाव आया। सिर पर हाथ जाते ही द्रव्य मुंडन रूप द्रव्य महाव्रतों ने सावधान कर दिया। पश्चात्ताप अनुचिन्तन किया- किसका पुत्र, किसका शत्रु, किसका राज्य? मेरा कोई पुत्र नहीं, कोई परिजन नहीं- सभी संयोगी। मेरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई शत्रु नहीं, राज्य वैभव नहीं- सभी अनित्य क्षणभंगुर हैं। अहो! धिक्कार है मुझे, धिक्कार है, ऐसा शब्दातीत आत्मभावों से पश्चात्ताप अनुचिन्तन करते हुए समस्त पापों का परित्याग करके, करणगुण श्रेणी-धर्मध्यान से शुक्लध्यान में जाकर सर्व मोहनीय कर्म का क्षय कर देते हैं, केवलज्ञान हो जाता है।

ऐसी ही मोहदशा एवं वासनाभाव जाग्रत हुआ- मुनि रथनेमि को, परन्तु सद्गुरु रूप में समक्ष उपस्थित महासती राजीमती की फटकार से सुस्थिर हो, पुनः आत्म समाधिस्थ हो गए, उसी भव में मोक्ष चले गए। किससे? किए हुए दुष्कृत पापों- महाव्रतों में लगे दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण और गर्हा करने से।

ऐसा ही धिक्कार निकला इलायती पुत्र या इलायची कुमार के द्वारा। नटी के रूपलावण्य से आकर्षित होकर वासना की दासता में पिता की प्रतिष्ठा, धन-वैभव की परवाह न करते नट बना। नट का खेल करते दृष्टि पड़ी गोचरी बहराने वाली अति रमणीक स्त्री पर। अहो! इस नटी से भी कई गुनी सुन्दर, अप्सरा जैसी। मुनि कैसे, मात्र अपनी गोचरी में, एषणा समिति के दोष न लग जाएँ, उसी गवेषणा में मगन। मैं कैसा वासना का पुतला और ये कैसे वासनादि, पंचेन्द्रिय विषयों के विजेता, मात्र आत्मा में ही रमणता करके शुद्ध दशा प्रकट करने वाले। मुनि के दर्शनमात्र से मुनित्व और शुद्ध आत्मा का चिन्तन करने से अपनी आत्मा को केवलज्ञान हो गया। तात्पर्य यह है कि मात्र दो घड़ी के पश्चात्ताप-अनुचिन्तन से केवलज्ञान हो जाता है। अतः शब्द या द्रव्य प्रतिक्रमण से भाव प्रतिक्रमण में जाने से ही संवर, निर्जरा एवं मोक्ष है।

गर्हापद में आया है- कुछ लोग मन से गर्हा करते हैं (वचन से नहीं) कुछ लोग वचन से गर्हा करते हैं (मन से नहीं) ऐसे ही कुछ लोग मात्र काया से गर्हा करते हैं (मन से नहीं) ऐसे ही कुछ लोग मात्र काया से गर्हा करते हैं (मन और वचन से भी नहीं)। -ठाणांग सूत्र २/१ । ऐसा ही प्रत्याख्यान के लिए भी आया है।

इस दृष्टिकोण से वर्तमान में प्रचलित प्रतिक्रमण पर भी विचार करें। पाटियों रूप/ शब्दरूप प्रतिक्रमण हो रहा है वर्षो से। प्रतिक्रमण करने-सुनने वाले भी यदि उन प्राकृत पाटियों का अर्थ-मर्म नहीं जानते और तदनुसार भावों में नहीं जाते तो ठाणांग सूत्र के अनुसार यह मात्र वाचनिक-कायिक क्रिया आत्मा की शुद्धावस्था प्रकट नहीं कर सकती। उत्तराध्ययन सूत्र (अध्ययन ६, गाथा १०-११) में भी भाषा के स्थान पर भावों की महत्ता प्रतिपादित है। प्रतिक्रमण-साधक यदि यही प्रतिक्रमण अर्थ जानकर, समझपूर्वक करें तब तो संवर-निर्जरा होती है और शब्द रूप ही हो तो कुछ काल तक सावद्य योग की क्रिया रुकने से, अशुभ से शुभ में आने से पाप से पुण्य हुआ। वह भी मन शुभ में प्रवृत्त हो तब। इसलिए प्रतिक्रमण का अर्थ भी जानना आवश्यक है।

सजग साधक को तो तुरन्त यह ध्यान में आता है कि उससे अमुक पाप हो गया या व्रत महाव्रत-समिति में दोष या अतिचार-अनाचार लग गया। वह उसी समय उसका पश्चात्ताप करके धिक्कार कर लेता है। बीच के बाईस तीर्थंकरों के काल में ऐसा ही था। अब ऐसी सजगता नहीं रहती, इसलिए उभयकालीन प्रतिक्रमण का विधान हुआ। परन्तु क्या उस अवधि में प्रतिपल होने वाले १८ पापों, अतिचार-दोषों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मरण-चिन्तन, क्रमशः एक-एक पाप की आलोचना होती है?

कुछ भाई पूछते हैं- प्रतिक्रमण से कर्मों की निर्जरा तो होती होगी? यह तब पूछा जाता है जब स्वयं ने अनुभव न किया हो। यदि वस्त्र का मैल उतर जाए, सिर का भार उतर जाए तो हम दूसरे को नहीं पूछते, क्योंकि स्वयं के अनुभव में आ जाता है। इसी प्रकार प्रतिक्रमण करने या सुनने से कर्म मैल धुला या बद्ध-स्पृष्ट कर्म का बोझ हल्का हुआ तो स्वयं को अनुभव में आना चाहिए। यह अनुभव में नहीं आता, इसलिए ऐसा पूछते हैं। पूर्वबद्ध-कर्म व्यक्ति को रागादि विकारी भाव में ले जाना चाहता है, अघाती कर्म के फलस्वरूप अनुकूल-प्रतिकूल व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति मिलने पर व्यक्ति राग या द्वेष, हर्ष या शोक, रति या अरति, आसक्ति या रागद्वेष में चला जाता है। यदि साधक उसके अनुसार वर्तन न कर वीतरागता, मध्यस्थभाव, विरति, अनासक्ति में जाता हो तो समझो निर्जरा हो रही है। स्वयं के अनुभव में आएगी।

वस्तुतः तो केवलिप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण कर देव-गुरु-धर्म तत्त्व और जीव से लेकर मोक्ष तत्त्व का श्रद्धान-प्रतीति-अनुभव होते ही विरति में जाने का तीव्र भाव प्रकट होता है। किन्तु पुरुषार्थ तीव्र नहीं होता, अतः अंशतः विरति होती है। इसलिए सम्यक्त्वी स्वयं ही पाँच पापों की सीमा करने रूप संकल्प और गुणव्रत-शिक्षाव्रत लेता है। फिर उनमें स्खलना हुई, अतिचार दोष लगे उसकी आलोचना करता है। व्रत लेने पर उनमें लगे अतिचार-दोषों एवं १८ पापों की आलोचना निंदना-गर्हा प्रतिक्रमण है।

अभी प्रतिक्रमण की शब्दरूप पाटी और उसके बोलने तथा विधि में की जाने वाली क्रिया पर भरपूर जोर है, परन्तु भावों पर ध्यान ही नहीं है। उदाहरणतः वंदना की 'खमासमणो' की पाटी लें। पहले भाग में है- "हे क्षमाश्रमण! मैं सर्व सावद्य योगों से परे होकर शक्ति अनुसार आपको वंदन करना चाहता हूँ अतः आपके अवग्रह में आने की अनुज्ञा दीजिए। दूसरे भाग में हाथ जोड़ मस्तक से चरण स्पर्श कर वंदना कर, उनके ध्यानादि में पहुँचने वाली बाधा के लिए क्षमा माँगता है। तीसरे भाग में उनकी रत्न-त्रयरूप साधना एवं शरीर की सुख साता पूछता है और अविनय आशातना हेतु क्षमा और प्रतिक्रमण काल में हुई आवश्यकी के अतिचार दोष को धिक्कारता है। अन्तिम भाग में उनके प्रति हुई ३३ आशातनाओं की क्षमा माँगता है।

प्रथमतः तो इस पाटी का अर्थ ही ध्यान में नहीं है। व्यवहार में वैसी क्रिया होती ही नहीं। होती भी है तो वह प्रतिक्रमण पूरा होने पर। फिर 'अहो कायं काय' और 'जत्ता भे जवणिज्जं च भे' में हाथ कैसे जुड़ें, प्रदक्षिणा कैसे हो, किस अक्षर के उच्चारण में शरीर की कौनसी क्रिया करें, इसे खूब पढ़ाया-किया भी जाता है, पर क्या तब गुरु के आत्मिक गुणों पर दृष्टि जाती है? क्या उनका गुणग्राम, गुणकीर्तन होता है? क्या उनके रत्नत्रयाराधना से आत्मा की शुद्ध दशा पर दृष्टि जाती है? क्या उनके जैसे गुण हमारे में भी प्रकट होते हैं? क्या उनके प्रति हुई अविनय-आशातना का चिन्तन-मनन कर स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त कर उस हेतु उनसे क्षमायाचना की जाती है ? प्रायश्चित्त दंड लिया जाता है? पुनः वैसा न करने का दृढ़ निश्चय होता है? इन भावों पर ध्यान ही नहीं है। वस्तुतः इन पर ध्यान जाना चाहिए। तब भाव वंदना हुई। उससे ज्ञान-दर्शन-चारित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की विशुद्धि होती है और सिद्धगति का मार्ग प्रशस्त होता है। (उत्तराध्ययन २९वाँ अध्ययन चौथा बोल)

पाँचवाँ आवश्यक कायोत्सर्ग है। वस्तुतः समभावरूप सामायिक, आत्मोपलब्धि रूप सामायिक, अरिहंत सिद्ध परमात्माओं और गुरु भगवन्तों की स्तुति-वंदना से आत्मा को शुद्ध कर पापों की आलोचना करके व्रत-महाव्रत लिए हुए हों तो उनके अतिचार दोषों को धिक्कार कर साधक के लिए उत्कृष्टतम धर्म-ध्यान की साधना हेतु यह पाँचवाँ आवश्यक है। लोगस्स की पाटी तो यहाँ तक पहुँचते हुए छह बार बोल ली। अब ध्यान में, ठाणांग सूत्र चौथे ठाणे के अनुसार, आज्ञा-विपाक-अपाय-संस्थान विचय में जाकर वीतराग वाणी में दृढ़ हुए आत्मतत्त्व पर ही दृष्टि करने के लिए एकत्व-अनित्य-अशरण-संसार भावनाओं का चिन्तन-मनन करते हुए परपदार्थ शरीरादि, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म के कारण होने वाले पर-भाव से हटकर, ज्ञाता-द्रष्टारूप आत्मा की रमणता का पुरुषार्थ करना चाहिए। कायोत्सर्ग में जाने की पाटी भी यही है। साधक समस्त विकारी भावों का प्रायश्चित्त कर, आत्मा को विशुद्ध करने और निःशल्य होने के लिए कायोत्सर्ग में जाता है। विषय-कषायों में अनुरक्त आत्मा को वोसिरा कर शुद्ध आत्मा में जाता है। इसी से कर्मों के पुंज के पुंज भस्मीभूत होकर निर्जरा होती है। यही प्रतिक्रमण का लक्ष्य है।

यदि ऐसा उत्कृष्ट भावप्रतिक्रमण नहीं होता है, कुछ सार नहीं निकलता है तो फिर पाटी रूप/शब्द रूप प्रतिक्रमण नहीं करें क्या? तो कहना होगा कि उसका निषेध नहीं है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें प्रतिक्रमण न करने के कारण उग्र दुष्परिणाम भोगने पड़े। भगवान् महावीर ने त्रिपृष्ठ वासुदेव के पूर्वभव में पाप कर लिया और प्रतिक्रमण आदि नहीं किया तो वह कर्म प्रगाढ़ हो गया। नाच-गाने चल रहे थे। राजा त्रिपृष्ठ वासुदेव को नींद आने लगी। अंगरक्षक को आदेश दे दिया था कि मुझे नींद आने लगे तो नाच-गान बंद करवा देना। नींद आयी। अंगरक्षक ने सोचा- राजा तो प्रतिदिन मजा लेते हैं, आज मैं भी ले लूँ। चालू रहने दिया। राजा की नींद खुली। देखा नाच-गाने अभी तक चल रहे हैं। अंगरक्षक पर क्रोध आया- 'दुष्ट कहीं का, क्या आदेश दिया था, सुनता नहीं क्या, बहरा हो गया था?' दूसरे अंगरक्षक को कहा- इसके कानों में गरमागरम सीसा भरवा दो। राजा होने का अहंकार, आदेश नहीं मानने वाले पर क्रोध और अंगरक्षक को भयंकर पीड़ा पहुँचाना। ऐसा करके पश्चात्ताप, प्रतिक्रमण, धिक्कार आदि कुछ नहीं किया और वह भव पूरा हो गया। उसके कारण प्रगाढ़ कर्म-बंध हो गया। अन्तिम भव में प्रभु महावीर को मुनि अवस्था में कान में कीलें ठुकवाकर भोगना पड़ा। व्यवहारनय से कहा- भोगना पड़ा। निश्चय नय से तो आत्मा में लीन थे, उससे दुःखी नहीं हुए, प्रदेश वेदन तो हुआ, विपाक वेदन नहीं।

इसी प्रकार गजसुकुमाल ने निन्यानवें लाख भव पूर्व सौत के पुत्र के सिर पर गरमागरम रोटा बँधवाकर निकाचित कर्म बाँधा तो अन्तिम भव में सिर पर अंगारे रखवाकर भोगना पड़ा।

खंदक ऋषि ने काचरा छीलने में प्रसन्नता प्रकट कर निकाचित कर्म बाँधा जो अन्तिम भव में शरीर का चमड़ा उतरवाकर भोगना पड़ा। महाराजा श्रेणिक ने गर्भवती हरिणी का शिकार किया, माता एवं सन्तान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों को तड़पते-तड़पते मरते हुए देखकर भी जोर से अट्टहास कर मजा लिया तो नारकी का बँध पड़ गया। वे बाद में क्षायिक सम्यक्त्व और तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करके भी नारकी का दुःख भोग रहे हैं।

जमाली भगवान् महावीर के मत से भिन्न प्ररूपणा करने लगे। निह्नव हो गए। दीर्घकाल तक संयम पाला। कठोर तप किया। व्याख्याप्रज्ञप्ति (९/३३) में वर्णन है कि वे विरसाहारी, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, रुक्षाहारी, तुच्छाहारी, अरसजीवी, विरसजीवी, उपशांतजीवी, विविक्तजीवी थे। अन्तिम समय में संथारा-संलेखना कर प्रतिक्रमण किया, परन्तु अपने मिथ्याभिनिवेश के भ्रम से मुक्त नहीं हुए। स्वयं भी दुर्बोध रहे, अन्यों को भी भ्रमित किया। ज्ञान के प्रत्यनीक होकर भी उसका प्रतिक्रमण-पश्चात्ताप नहीं करने से किल्विषी देव बनना पड़ा।

ऐसा ही एक उदाहरण व्याख्याप्रज्ञप्ति (१३/६) में है कि पिता ने तो सोचा कि पुत्र राज्य मोह में न फँसे, मुक्तिमार्ग चुन ले, इसलिए उसे राज्य नहीं दिया और भानजे को दिया। पुत्र अभीचिकुमार नाना के यहाँ रहते हुए श्रमणोपासक हो गया। प्रतिक्रमण करता था। उसमें समस्त ८४ लाख जीवयोनियों से क्षमायाचना करता था। पर 'एक दुष्ट पिता को छोड़कर' ऐसा बोलता था। पिता विषयक वैर विस्मृत न कर भव पूरा हो गया तो असुरकुमार देव बनना पड़ा।

इनकी तुलना में देखें कि ११४१ मनुष्यों की हत्या का पाप भी अर्जुनमाली अणगार ने मात्र ६ माह में प्रतिक्रमण करके, उसके ही एक भाग धर्मध्यान में लीन होकर, समभाव से गालियाँ, थू-थूं, लात-घूंसों का परीषह सहकर क्षीण कर दिया एवं सर्व कर्मो से मुक्त हो गए।

ये समस्त उदाहरण हमें सजग करते हैं कि प्रतिक्रमण, पश्चात्ताप, धिक्कार, आलोचना, गर्हा आदि न करते हुए वह भव पूरा हो जाता है तो अगले भव में वह कर्म फल उसे भोगना पड़ता है। अतः यह कैसे कहें कि प्रतिक्रमण नहीं करना? प्रतिक्रमण न करने से तो उग्र दुष्फल मिलता है। अतः प्रतिक्रमण अवश्य करें, परन्तु वही क्रिया यदि सम्यक्-समझपूर्वक, भावपूर्वक अन्तःकरण से की जाए तो उसका असंख्यात गुणा, अनन्तगुणा लाभ हो सकता है।

*-द्वारा सोनीसन्स गारमेन्ट्स, १-यू.बी., जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org